जीवन कौशलों की शिक्षा प्रदान करने में घर, समुदाय, जनसंचार माध्यम तथा विद्यालय की भूमिका

रेनू सिंह*

किशोरों को समाज में समायोजित व्यक्ति के रूप में विकसित होने के लिए जीवन कौशलों को जानने की आवश्यकता है। जीवन कौशल व्यक्ति को वह सामर्थ्य देते हैं जिससे वह ज्ञान को (जो कुछ वह जानता है) तथा दृष्टिकोणों या जीवन मूल्यों (जिनमें वह विश्वास करता है और अनुभव करता है) को कार्यरूप में परिणत करने के योग्य बनाता है। ज्ञान के विस्फोट तथा जनसंचार माध्यमों में उभार ने युवा की जीवनशैली को बदल दिया है। उनमें उचित मूल्यों और विश्वासों को स्थापित करना अतिआवश्यक है। माता-पिता, अध्यापकगण, विद्यालयों, समुदायों, जनसंचार माध्यमों और स्वयं विद्यार्थियों का यह संयुक्त उत्तरदायित्व बन जाता है। मुख्य जीवन कौशलों जैसे तनाव और भावनाओं से जूझना, व्यवसाय का चयन, आत्मसम्मान हेतु निर्णय लेना, आलोचनात्मक चिन्तन, प्रभावशाली वैचारिक आदान-प्रदान, यौन विषयक स्वास्थ्य शिक्षा तथा इन्हें कैसे विकसित किया जाए आदि पर इस लेख में सविस्तार चर्चा की गई है।

समाज में परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा एक सशक्त माध्यम तथा गतिशील प्रक्रिया है। शिक्षा का सरोकार अब सिर्फ़ ज्ञान प्राप्त करने तक सीमित नहीं रहा है बल्कि उपयुक्त रुचियों, दृष्टिकोणों और जीवन मूल्यों के विकास तथा समीक्षात्मक चिंतन और निर्णय की क्षमता विकसित करने में भी शिक्षा की अहम भूमिका है। वर्तमान समय में कोई भी राष्ट्र उच्चकोटि के शिक्षित तथा कुशल व्यक्तियों की प्रचुर आपूर्ति का आश्वासन दिए बिना सामाजिक या आर्थिक विकास के बारे में सोच ही नहीं सकता। अब केवल वे ही राष्ट्र उभर कर आ सकते हैं जिनके पास अपने नागरिकों को शिक्षित करने के साधन हैं तथा जो अपने अधिकांश नवयुवकों को उच्चकोटि की तकनीकी और वैज्ञानिक शिक्षा प्रदान करने के कार्यक्रम पर आरूढ़ हैं। शिक्षार्हतायुक्त व्यक्ति ही उत्पादकता बढ़ाने में अधिक सहायक होते हैं। आज तीव्र गति से परिवर्तनशील जगत के कारण विद्यार्थियों के ऊपर अत्यधिक सामाजिक दबाव पड़ रहा है क्योंकि उन्हें परिवर्तन के साथ

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,* शिक्षा संकाय, उदय प्रताप स्वायत्तशासी महाविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

कदम-से-कदम मिलाकर चलना पड़ता है। उन्हें प्रारंभ में ही शैक्षिक उपलब्धि हेतु अपनी जीवन शैली में परिवर्तन लाने के दबाव को झेलना पड़ता है। *(वुलफोक, ए., 2003)*

किशोरों को समाज में समायोजित व्यक्ति के रूप में विकसित होने के लिए जीवन कौशलों को जानने की आवश्यकता है। जीवन कौशल व्यक्ति को वह सामर्थ्य देते हैं जिससे वह ज्ञान को तथा दृष्टिकोणों / जीवन मूल्यों को कार्यरूप में परिणत करने के योग्य बनाता है। जीवन कौशल को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि सकारात्मक व्यवहार की वे योग्यताएँ जो जीवन में सही चुनाव करने में हमारी सहायता करती हैं, इन्हें जीवन मूल्य कहते हैं। *(कर्टिस और वैरेन, 1973)*

कौशल विकास की प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्तियों को विकसित और परिपक्व होने में सहायक सिद्ध होती है, अपने निर्णयों के संबंध में विश्वास रखना सिखाती है तथा अपने अंदर और बाहर से शक्ति के स्रोतों को खोजना सिखाती है *(मीना, 2010)*।

कौशलों की शिक्षा विद्यार्थियों को आधारभूत कौशलों का स्मरण कराती है जिनके आधार पर वे व्यक्तियों के साथ संबंध स्थापित करने और अपने सह-अस्तित्व के अंतर को स्पष्ट करना सीखते हैं। व्यक्तियों के कौशल विकास में शिक्षा और विशेष रूप से विद्यालयी शिक्षा सशक्त भूमिका अदा करती है, क्योंकि निर्माण के प्रारंभिक वर्षों में यह व्यक्तियों को विभिन्न प्रकार के अनुभवों की ओर अभिमुख करती है और इसके अंदर वह सामर्थ्य है जिससे यह सीखने और अभ्यास करने के लिए व्यक्तियों को उपयुक्त अनुरूपित परिस्थितियाँ प्रदान करती है। इस महत्वपूर्ण कार्य को संपन्न करने के लिए विभिन्न प्रकार के विद्यालय तथा संस्थाएँ और अभिकरण जैसे घर, विद्यालय, समुदाय तथा जनसंचार माध्यमों को महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है।

विद्यालयी शिक्षा की विषय-वस्तु और प्रक्रिया से यह अपेक्षा की जाती है कि वह जीवन संबंधी कौशलों को विकसित करे व उन्हें प्रभावित करे। हालाँकि सामान्य रूप से ऐसा अनुभव किया जाता है कि विद्यालय पाठ्यक्रम की संप्रेषण प्रक्रिया कौशल विकास की दिशा में इच्छित प्रभाव नहीं पैदा कर सकी है। विशेष रूप से जीवन कौशल विकसित करने हेतु यौन शिक्षा से संबंधित अलग-थलग से ली गई विषय-वस्तु जिसे पाठ्यचर्या के मुख्य विषयों से बिना जोड़े पढ़ाया जाता है, उसमें शिक्षक झिझक तथा बाधाओं का अनुभव करता है। मात्र जानकारी संप्रेषित करने से विद्यार्थी इस विषय में अधकचरा ज्ञान प्राप्त करते हैं और उनकी जिज्ञासा उन्हें गलत माध्यमों से अधिक जानकारी प्राप्त करने की ओर ले जाती है जिसका नतीजा गलत होता है।

आज की ज्वलंत समस्या है किशोरों में बढ़ता एच.आई.वी. / एड्स। इस ओर किशोरों को उचित दिशा-निर्देश तथा परामर्श की आवश्यकता है। अधिकांश समय वे ऐसे संवेदनशील मुद्दों पर बातचीत करने से कतराते हैं और लज्जा का अनुभव करते हैं। यदि वे इस बीमारी से अपनी सुरक्षा करने में असमर्थ होते हैं तो उन्हें मृत्यु का सामना करना पड़ता है *(नाको, यूनिसेफ, संगली अध्ययन, 2002)*। यह जानकर आश्चर्य होता है कि करीब 80 प्रतिशत छात्र अपनी व्यक्तिगत समस्याओं के बारे में अपने अभिभावक से बात

नहीं करना चाहते हैं *(नारायनन, एस., 2003)*। अतएव यह एक तात्कालिक आवश्यकता है कि विद्यालयी शिक्षा, जीवन कौशलों के विकास पर अधिक बल दे।

कौशल एक अस्पष्ट संकल्पना है। शब्दकोशों में इसके अर्थ को विभिन्न रूपों में वर्णित किया गया है जैसे- निपुणता, प्रवीणता और कार्यकुशलता। ''अभ्यास और अधिगम के माध्यम से किसी कार्य को कर सकने की योग्यता। सामान्यतया कौशल का प्रयोग अभियांत्रिक योग्यता के संदर्भ में अथवा तकनीकी निपुणता अथवा तकनीकी ज्ञान जो कि किसी कार्य को सम्पन्न करने की विधियों और साधनों पर आधारित है जैसे किसी साइकिल या मोटर साइकिल की मरम्मत करना अथवा लकड़ी का फ़र्नीचर तैयार करना आदि के लिए किया जाता है। कौशल का प्रयोग शिक्षा में विस्तृत अर्थ में लंबे समय से होता आया है। विशेष संदर्भों में इसका प्रयोग अन्धाधुन्ध हुआ है जैसे यांत्रिक कौशल से संबंधित, व्यक्तिगत कौशल आदि। जीवन कौशलों की संकल्पना का प्रवेश शिक्षाशास्त्र के शब्दकोश में कुछ समय पूर्व ही हुआ है और इसका विशेष संदर्भयुक्त अर्थ है।'' *(इग्नू, 2007)*

जीवन कौशलों के उपागम कक्षा आधारित क्रियाओं के संक्रियात्मक वर्ग से कहीं अधिक हैं। यह सशक्तिकरण का उपागम है जो छात्रों को सकारात्मक कार्यों में मदद करता है जिससे वे स्वस्थ व्यवहारों को स्वीकार करने का बल प्रदान करें। जीवन कौशलों की शिक्षा सभी संस्कृतियों में तीन भिन्न-भिन्न प्रकारों में एक जैसी है–

- जीवन - कौशलों की शिक्षा का केंद्रबिंदु जीवन - कौशलों का अधिगम है।
- जीवन - कौशलों की शिक्षा बच्चों को इस योग्य बनाती है कि वे कौशलों से सीख सकें और प्रमुख स्वास्थ्य एवं सामाजिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में अभ्यास कर सकें।
- जीवन कौशलों की शिक्षा जिस दर्शन पर आधारित है, वह यह है कि नौजवानों को अपने कार्यों का अधिक उत्तरदायित्व लेने के लिए उन्हें सशक्त करना। सभी युवाओं के व्यक्तित्व के विकास के लिए जीवन कौशलों के विकास की आवश्यकता होती है। *(राव, 2003)*

घर की भूमिका

विद्यालय में विकट प्रतिद्वन्द्विता है तथा पाठ्यक्रम और जानकारी का भारी बोझ है। माता-पिता को चाहिए कि वे विद्यालय से जुड़ें, जिससे बच्चों में इच्छित और उपयुक्त जीवन कौशलों का विकास किया जा सके। यदि जीवन कौशलों को उचित प्रकार से विकसित किया जाए तो वे सकारात्मक व्यावहारिक परिवर्तनों को साकार रूप देने में मदद कर सकते हैं। घर पर निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए-

- छोटे बच्चों को माता-पिता द्वारा ज़रूरत से ज़्यादा सुरक्षा प्रदान करना हानिकारक है क्योंकि इससे वे किसी क्षेत्र में अपने निर्णय लेने में समर्थ नहीं हो सकेंगे।
- घर पर संवेगों का उचित प्रशिक्षण अति आवश्यक है। बच्चों को यह सिखाया जा सकता है कि संवेग हमारे व्यवहार को कैसे प्रभावित करते हैं।
- आदतों का निर्माण अधिकतर घर पर होता है। माता-पिता को चाहिए कि तनाव पैदा किए बिना कार्य पूरा करने में बच्चों की मदद करें।

- माता-पिता अधिकांश समय अपने बच्चों के ऊपर संगी-साथियों के समूह के प्रभाव के विषय में चिन्तित रहते हैं। केवल चिंता करने से ही बच्चे संगी-साथी के प्रभाव (पीयर प्रेशर) से बाहर नहीं आयेंगे। इसके लिए आवश्यक है, बच्चे के साथ संवाद स्थापित करना। संवाद भी ऐसा जिसमें बच्चे की भागीदारी हो न कि अभिभावकों के उपदेश की। इस प्रकार वे अपने बच्चों को व्यक्तिगत जीवन मूल्यों की प्रणाली विकसित करने में उनकी सहायता कर सकते हैं और उन्हें अपने संगी-साथियों के प्रभाव से स्वतंत्र रहकर अपने विश्वासों तथा आंतरिक मूल्यों पर डटे रहना सिखा सकते हैं।
- माता-पिता को चाहिए कि वे किशोरों को ऐसा वातावरण प्रदान करें जिससे वे सलाह लेने और संवेदनशील प्रजनन विषयक स्वास्थ्य के मुद्दों की जानकारी में सहभागी बनने के लिए वार्तालाप करने में स्वतंत्रता का अनुभव करें।
- अधिकांश माता-पिता यौन शिक्षा से संबंधित बातें करने में अभी भी संकोच करते हैं। उन्हें यह अनुभव होना चाहिए कि यौन के विषय में उचित जानकारी की कमी गलत धारणाओं की ओर अग्रसर करने वाली होगी और जो खतरनाक साबित होगा।
- माता-पिता को यह देखना चाहिए कि घर का वातावरण शारीरिक वृद्धि और स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त पोषण, आराम और तनावमुक्ति के अवसरों से भरपूर हो और फैलने वाली बीमारियों तथा शारीरिक चोटों से सुरक्षा करने के लिए अनुकूल हो।
- घर का वातावरण आदर्शपूर्ण तथा स्वस्थ होना चाहिए। माता-पिता के बीच की नोंक-झोंक व झगड़े उन बड़ी-बड़ी बातों को झुठला देंगे जो आपसी प्रेम के विषय में उनके बड़े-बड़े वादों पर टिकी होती है।
- माता-पिता को चाहिए कि वे विद्यालयों और अध्यापकों से संबंध बनाएँ और उनकी यौन-विषयक स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करने की दिशा में की गई कोशिशों में सहयोग करें।
- माता-पिता को चाहिए कि स्वस्थ वातावरण बनाए रखने के प्रयत्नों में समुदाय के साथ सहयोग करें।

अध्यापक की भूमिका

''विश्व स्वास्थ्य संगठन'' (1993) द्वारा परिभाषित जीवन कौशल अपनाए गए सकारात्मक व्यवहार की योग्यताएँ हैं जो व्यक्तियों को प्रतिदिन के जीवन की माँगों और चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करने की योग्यता प्रदान करती हैं। जीवन के कौशल व्यक्तियों को जीवन के तनाव और दबाव का निराकरण करने का सामर्थ्य प्रदान करते हैं तथा चुनौतियों से भरी हुई परिस्थितियों का प्रबंधन करने में उन्हें सक्षम बनाते हैं। यह सामाजिक अधिगम के सिद्धांत (बिन्दुरा, 1997) पर आधारित है जो जीवन के अनुभवों, संरचनात्मक अनुभवों और क्रियात्मक रूप से प्राप्त अनुभवों के संचालन के लिए अवसर प्रदान करते हैं।

जीवन कौशल आधारित शिक्षा को अध्यापक दैनिक पाठ्यक्रम में समाहित करके प्रदान कर सकता है। अध्यापक को यह देखना है कि छात्रों में मनोसामाजिक योग्यताएँ और निपुणताएँ किस प्रकार विकसित की जाएँ जो शारीरिक, मानसिक

और सामाजिक भलाई प्राप्त कराने में सहायक हों। विशेष रूप से इस शिक्षा का उद्देश्य किशोरों और युवाओं की प्रजननात्मक एवं यौन संबंधी स्वास्थ्य के विषय में उन्हें सकारात्मक कार्य करने में सशक्त बनाना और अच्छी जीवनशैली को चुनने की शक्ति प्रदान करना तथा स्वयं की जोखिम भरी परिस्थितियों से रक्षा करने का सामर्थ्य देना है और स्वस्थ अन्तर्वैयक्तिक और सामाजिक संबंधों को बनाने की शक्ति देना है।

- अध्यापक छात्रों में स्वयं की सार्थकता, आत्मविश्वास तथा आत्मगौरव के प्रति उपयुक्त दृष्टिकोण अपनाने की प्रवृत्ति को विकसित कर सकता है। छात्र ऐसे अध्यापक का अधिक सम्मान और स्मरण करते हैं, जिन्होंने उनकी समस्याओं में रुचि दिखाई है और बढ़ती उम्र के साथ उनकी जिज्ञासाओं को शांत करने का अवसर प्रदान किया है। *(ए. व्हाइटसाइड, 2001)*
- अध्यापक को जीवन के तथ्यों के विषय में अर्थात् वृद्धि प्रक्रिया के संबंध में क्रियात्मक, नैतिक और संवेगात्मक कोणों से सही जानकारी प्रदान करनी चाहिए। अध्यापक को छात्रों को इस योग्य बनाना चाहिए कि वे उच्च कोटि के जोखिम भरे व्यवहार से बचने के कौशलों में महारत हासिल कर लें। अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि एच.आई. वी. / एड्स तथा तत्संबंधी प्रकरणों के संबंध में सही-सही सूचना और ज्ञान दें।
- आधुनिकीकरण, शहरीकरण, भूमण्डलीकरण तथा जनसंचार माध्यमों की अधिकता ने युवाओं की आकांक्षा, मूल्यों व दृष्टिकोणों को बदल दिया है। अध्यापक का यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह युवाओं को आवश्यक जीवन कौशलों से सुसज्जित करें।
- अध्यापक पाठ्यक्रम व शिक्षण प्रक्रिया की समीक्षा एवं पुनर्रचना करें। मानवीय मूल्यों को समाहित करने के लिए अध्यापक छात्रों की मदद कर सकते हैं।
- अध्यापक को एच.आई.वी. / एड्स की बढ़ती समस्या का व्यक्ति, परिवार, सम-समूह, समुदाय, समाज, राज्य तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में ज्ञान के स्तर को बढ़ाने में छात्र की सहायता करनी चाहिए।
- अध्यापक को यौन शिक्षा के साथ नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों को जोड़ना चाहिए जिससे नई पीढ़ी एच.आई.वी. / एड्स से रहित हो। एच.आई.वी. / एड्स जीवनशैली का रोग है। इन जीवन संबंधी मुद्दों के हल के लिए अध्यापक को अनेक प्रकार की कार्यनीतियाँ बनानी होंगी, उनमें जागरुकता लानी होगी ताकि वे इन रोगों से अपना बचाव कर सकें। *(बोटविन, 1980-84)*

विद्यालय की भूमिका

व्यक्ति जो औपचारिक शिक्षा ग्रहण करता है उसका मुख्य स्रोत विद्यालय है। विद्यालय में प्रदत्त ज्ञान की प्रकृति समाज की आवश्यकताओं पर निर्भर करती है। समाज की गतिशील प्रकृति के कारण किसी भी समाज में परिवर्तन एक स्थायी लक्षण हुआ करता है। किसी भी नये परिवर्तन से समाज में असंतुलन भी आता है। यहीं पर विद्यालय की भूमिका आती है। उसका दायित्व है कि वह इन परिवर्तनों को

इस बात की समझ बढ़ रही है कि किशोरों की स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं, विशेषकर उनके प्रजनन और यौन संबंधी आवश्यकताओं पर ध्यान दिए जाने की ज़रूरत है। चूंकि इन आवश्यकताओं का संबंध यौन या यौनिकता से है जो सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील मुद्दा है, विद्यार्थियों को उचित सूचना पाने के अवसरों से वंचित रखा जाता है। चूँकि यौन संबंधी उनकी समझ सुनी-सुनाई बातों, मिथकों या भ्रांतिपूर्ण धारणाओं पर आधारित होती है, वे खतरनाक स्थितियों में पड़ जाते हैं। इससे नशीले पदार्थ या उनमें एचआईवी/एड्स संक्रमण आदि का खतरा बढ़ जाता है। आयु-आधारित और संदर्भ-विशिष्ट हस्तक्षेपों को जगह दी जाए, जो किशोर के यौन स्वास्थ्य से संबंधित हों, ताकि एचआईवी/एड्स और नशे की आदतों से उनको सावधान किया जा सके। इसलिए बच्चों को इस संबंध में ज्ञान बढ़ाने और जीवन के कौशल सिखाने की दिशा में प्रयास आवश्यक है, ताकि वे बढ़ती उम्र की समस्याओं से जूझ सकें। (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005, पृष्ठ-64-65)

स्थायित्व देकर समाज में उन्हें स्वीकार्य बनायें। विद्यालयों द्वारा समाजीकरण का कार्य भी बहुत महत्वपूर्ण है। समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज के परिपक्व सदस्य जैसे माता-पिता अध्यापक तथा समुदाय के अन्य वे सदस्य जो बच्चों की मान्यताओं तथा उनके व्यवहार को प्रभावित करते हैं, समाज में सहभागी बनकर अपना योगदान देने की दिशा को भी प्रभावित करते हैं *(बुलफ़ोक, ए. 2003)*।

विद्यालय का दायित्व शिक्षार्थी को ज्ञान देने भर तक नहीं है अपितु उन्हें इस प्रकार विकसित करने में सहायता प्रदान करना है जिससे वे समाज के परिपक्व एवं संवेदनशील सदस्य बन सकें।

- अध्यापक प्रभावी ढंग से अपनी भूमिका का निर्वाह तभी कर सकता है जब विद्यालय में सामंजस्यपूर्ण वातावरण हो। जीवन कौशल आधारित शिक्षा के समुचित विकास के लिए हमें प्रशिक्षित अध्यापक चाहिए। विद्यालय को इसे मुहैया कराना है। विद्यालयों में ऐसे अध्यापकों की नियुक्ति करनी चाहिए जो प्रोत्साहन प्रदान कर छात्रों में सकारात्मक व्यवहार की शुरुआत कर सकें।
- स्वच्छता संबंधी पाठों के माध्यम से विद्यालय को यौन शिक्षा की संभावनाओं की तलाश करनी चाहिए। किंतु इस विषय में यह सावधानी बरतना आवश्यक है कि अध्यापक तथ्यों के प्रति पूरी तरह सुनिश्चित हों। वार्ता के लिए विद्यालय जानकारों को बुला सकता है। यदि हम चाहते हैं कि बच्चों में यौनाचार के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित हो तो हमें यौन शिक्षा को गंभीरता से लेना होगा।
- पाठ्यचर्या के इस क्षेत्र के लिए पारंपरिक शिक्षण विधियों के अलावा निम्नलिखित विधियों का तालमेल बिठाना आवश्यक है-
  1. पूछताछ या खोजबीन करना
  2. मूल्य स्पष्टीकरण
  3. अन्य अंत:क्रियात्मक / सहभागितापरक विधियाँ
  4. पाठ्यसहगामी क्रियाएँ
  5. परामर्श
  6. दृश्य-श्रव्य / मुद्रित सामग्री का प्रयोग

'आवश्यकता आधारित उपागम' शारीरिक, मनो - सामाजिक तथा मानसिक पक्षों के विभिन्न आयामों को निर्देशित कर सकता है जिन्हें स्कूली शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर सम्मिलित करने की आवश्यकता है। इन सरोकारों की मूल समझ आवश्यक है लेकिन महत्वपूर्ण आयाम यह है कि खेलों, अभ्यासों, वैयक्तिक और सामुदायिक स्वच्छता के साथ व्यावहारिक रूप से जुड़कर स्वास्थ्य, कौशलों और शारीरिक कुशल क्षेम का विकास किया जाए। स्वास्थ्य और सामुदायिक जीवन में व्यक्तिगत और सामुहिक ज़िम्मेदारियों पर ज़ोर दिये जाने की ज़रूरत है। राष्ट्रीय स्तर के कई स्वास्थ्य कार्यक्रम; जैसे- प्रजनन व बाल स्वास्थ्य, एच.आई.वी./एड्स, टीबी और मानसिक स्वास्थ्य बच्चों के बचाव को ध्यान में रखकर उपाय करने में लगे हैं। बच्चों पर इन कार्यक्रमों की माँगों को मौजूदा पाठ्यक्रम से जोड़ा जाना चाहिए। *(राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005, पृष्ठ-65-66)*

समुदाय की भूमिका

जीवन कौशल शिक्षा, विशेष रूप से यौन विषयक स्वास्थ्य शिक्षा एच.आई.वी./एड्स की शिक्षा का दायित्व केवल माता-पिता तथा अध्यापकों का ही नहीं हो सकता। इसमें समुदाय, युवा अभिकरणों, स्वास्थ्य संगठनों तथा स्वयं किशोरों को भी सम्मिलित करना होगा। विद्यालय और समुदाय के बीच एक अच्छा सहयोगात्मक संबंध स्थापित होना चाहिए। हम विद्यालय को समुदाय के पास ले जा सकते हैं अथवा समुदाय के लोगों को विद्यालय में नियंत्रित कर सकते हैं। *(इलिंगवर्थ, पी., 1990)*

युवा विद्यार्थियों को एड्स से आत्मरक्षा करने के बारे में सूचना देना अत्यंत ज़रूरी है। यह ज्ञान देने वाले व्यक्ति या तो विद्यालय के अध्यापक हो सकते हैं या दूसरे व्यावसायिक क्षेत्र के व्यक्ति, जैसे सामाजिक कार्य, नर्सिंग या लोक स्वास्थ्य क्षेत्र के कार्यकर्ता। कुछ चिकित्सा विज्ञान के छात्र इस कार्य को भली-भाँति निष्पादित करने में समर्थ हो सकते हैं। युवाओं की प्रवृत्ति को मोड़ने के लिए विशेष प्रकार की प्रदर्शनी और मेलों का आयोजन किया जा सकता है। अच्छे प्रभाव हेतु गलियों और बाजारों में झण्डे, चित्र, पोस्टर और स्लोगन (नारे) अंकित किए जा सकते हैं।

चिकित्सकों, वकीलों और गैर-सरकारी संगठनों तथा समाज कल्याण विभाग के अधिकारियों के विशेष व्याख्यान उपयोगी हो सकते हैं। समुदाय के ये लोग अतिरिक्त एवं आवश्यक सूचना प्रभावी ढंग से प्रदान कर सकते हैं। विद्यालय न जाने वाले लोगों के लिए युवा कल्याण में संलग्न लोग नुक्कड़ नाटक द्वारा आधारभूत संदेश दे सकते हैं। समुदाय, त्योहार मनाने की दिशा में अधिक योगदान कर सकता है और उसके द्वारा आवश्यक संदेश पहुँचा सकता है।

जनसंचार माध्यमों की भूमिका

वर्तमान समय में जनसंचार माध्यमों की धूम के कारण छात्रों को विद्यालयों से ही नहीं अपितु समाचार पत्र, टेलीविज़न, कंप्यूटर, रेडियो, पत्रिकाओं आदि माध्यमों से भी ज्ञान प्राप्त होता है। स्वास्थ्य शिक्षा के महत्त्व के संबंध में जनसंचार माध्यम जागरुकता पैदा करने में अहम् भूमिका अदा कर सकते हैं। भारत में गरीबी,

निरक्षरता तथा अज्ञान की जड़ें अभी भी गहरी हैं। इसलिए सभी बच्चे विद्यालय नहीं जाते। इस दिशा में जनसंचार माध्यमों की भूमिका को और बढ़ाया जा सकता है।

शिक्षा का संदेश प्रदान करने के लिए बैनर, दीवारों पर लिखना, फिल्में, पोस्टर, चित्रकारी आदि भी उपयोगी हो सकती हैं। प्रदर्शनियों का आयोजन भी किया जा सकता है। अभी भी ज़्यादातर लोग रेडियो सुनते हैं। इस माध्यम से उपयोगी वार्ताओं का प्रसारण किया जा सकता है। आकाशवाणी में रेडियो परामर्श सुविधा उपलब्ध है जहाँ से लोग सीधे अपनी शंकाओं का निवारण कर सकते हैं। सिनेमा भी एक विख्यात माध्यम है। यौन विषयक स्वास्थ्य शिक्षा के संदेशों तथा पाठों के संप्रेषण हेतु वृत्तचित्र तथा स्लाइड दृश्यों का भरपूर उपयोग किया जा सकता है। टेलीविज़न पर धारावाहिक, पैनल चर्चा, प्रश्न मंच आदि का आयोजन किया जा सकता है। आज टेलिविज़न एक लोकप्रिय माध्यम बन गया है। अत: ऐसे माध्यम से यौन संबंधी स्वास्थ्य शिक्षा के संदेशों को संप्रेषित करना आसान है।

इस संवेदनशील मुद्दे के विषय में जनसमूह को संदेश देने के लिए संदेश-पत्र (न्यूजलैटर), पत्रिकाएँ, प्रपत्र, पाक्षिक पत्रिकाएँ तथा समाचार-पत्र अन्य जनसंचार माध्यम हो सकते हैं। सेट्लाइट संचारतंत्र, इंटरनेट तथा अन्य प्रौद्योगिकी के विकास के आगमन के साथ-साथ विदेशी जनसंचार माध्यमों से रूबरू होने के कारण हमारे नवयुवकों को घर और विद्यालय में अनेकों चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। उनका नकारात्मक प्रभाव हमारे भारतीय समाज द्वारा स्वीकृत सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों से उन्हें विचलित कर सकता है। यहाँ पर उनका मार्गदर्शन सर्वाधिक वांछित यौन स्वास्थ्य शिक्षा के क्षेत्र में करना चाहिए। उन्हें उचित-अनुचित का निर्णय करने में सक्षम बनाना चाहिए।

संदर्भ

एच.आई.वी. तथा एड्स शिक्षा, वी.इ.एस.ई. 065 खं-4 पेज-36, इग्नू- 2007.

इलिंगवर्थ, पैट्रिशिया. 1990. *एड्स एंड द गुड सोसाइटी.* राउटलेज, लंदन.

कर्टिस, पी., एंड पी. वैरेन. 1973. द *डायनामिक्स ऑफ लाइफ स्किल्स कोचिंग.* डिपार्टमेन्ट ऑफ मैन पावर एंड इमिग्रेशन, प्रिंस एलबर्टस एस.के.

डब्ल्यू.एच.ओ. 1993. *प्रमोटिंग हेल्थ थ्रू स्कूल्स.* रिपोर्टस ऑफ ए डब्ल्यू.एच.ओ. एक्सपर्ट कमेटी ऑन काम्प्रिहेन्सि स्कूल हेल्थ एजुकेशन एंड प्रमोशन, जेनेवा 27, स्विटजरलैंड.

थामस, जी. 2006. *लाइफ स्किल्स एजुकेशन एंड कैरीकुलम.* शिप्रा पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

थॉमस, जी. 1995. *एड्स एंड फैमिली एजुकेशन,* रावल पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

एनसीईआरटी. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005,* नयी दिल्ली.

नारायनन, एस. 2003. *लाइफ स्किल्स-मास्टर की टू इम्पलायमेन्ट.* इम्पलायमेन्ट न्यूज़, नवंबर-2003 (इण्डिया).

पियाजे, जीन. 1948. द *मोरल डेवलपमेंट ऑफ* द *चाइल्ड.* मैग्राहिल बुक कंपनी, लंदन.

प्रॉबलम्स ऑफ़ *एडोलोसेंस लर्नर्स,* www.ncert.nic.in

बिंदुरा, ए. 1997. *सोशल लर्निंग थ्योरी,* न्यू जर्सी, ईगलवुड क्लिफ्स, एन.जे. प्रेन्टिस हॉल.

मीना. 2010. द *नीड फॉर लाइफ सेन्टरर्ड एजुकेशन वाया लाइफ़ स्किल्स पैराडाइम.* यूनिवर्सिटी न्यूज, व.48, नं. 17.

रॉव, यू.एन.बी. 2003. *फ्रॉम एडोलेसेन्ट टू एचिवर्स इम्पलाइमेन्ट न्यूज.* नवंबर–2003 (इण्डिया).

लोवेन्सन, आर. एंड ए, व्हाइटसाइड. 2001. *एच.आई.वी./एड्स इम्पिलीकेशन फॉर पावर्टी रिडक्शन.* यू.एन.डी.पी. पॉलिसी पेपर, न्यूयार्क यू.एन.डी.पी.

सेफ स्पेस फॉर यंग पिपुल. 2004. *ए रिव्यू ऑफ ए.ई.पी.*– ए नाको एंड यूनिसेफ पब्लिकेशन.

सेठ, मृदुला. बिल्डिंग लाइफ स्किल्स फॉर बेटर हेल्थ–द राजस्थान एक्सपीरिएन्स. दिल्ली, यू.एन.एफ.पी.ए., http:www.unfpa.org.in

शब्द, संवेदना और समझ

प्रमोद कुमार तिवारी*

शब्द और भाषा के सवाल सिर्फ़ अभिव्यक्ति और संप्रेषण के सवाल नहीं होते, भाषा इनसे आगे की यात्रा तय करती है। प्रत्येक शब्द अपनी एक कहानी कहता है, वह अपना इतिहास, अपनी जीवन यात्रा, अपने रिश्तेदारों के बारे में, अपने कद (स्तर) आदि के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएँ देता है। कहा जा सकता है कि प्रत्येक शब्द एक दीपक की तरह होता है जो अपने आस-पास के शब्दों, निकट संबंधियों पर प्रकाश डालकर हमें उनके बारे में भी बताता है। दुनिया की अनेक भाषाओं (इस लेख में हिंदी, अंग्रेज़ी, उर्दू और जापानी भाषा का उदाहरण लिया गया है) के ज़्यादातर शब्दों का निर्माण कुछ बीज शब्दों से हुआ है। शब्दों के इस मूल को जानने के लिए विद्वानों ने व्युत्पत्ति शास्त्र का विकास किया है। व्युत्पत्ति का अपना विशेष महत्त्व है, विद्वानों ने इसका अर्थ बहुज्ञता दिया है और इसे प्रतिभा का संस्कारक माना है। प्रस्तुत लेख में शब्द और व्युत्पत्ति पर बल देने का कारण अध्यापकों-छात्रों को शब्दों को रटने की बजाय उन्हें शब्दों से जुड़ने, समझने और उनकी मज़ेदार व्युत्पत्ति का आनंद लेने हेतु प्रेरित करना भी है।

ब्रह्मबिंदूपनिषद् में एक सूत्र आता है- 'शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छिति' अर्थात् शब्द ब्रह्म में निष्णात होने पर ही व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। यह सूत्र शब्दों को जानने के साथ-साथ उसके भीतर प्रवेश कर उसे समझने का भी संकेत कर रहा है।

शब्दों के द्वारा हम विचार करना सीखते हैं और विचार के द्वारा ही हम खुद को और जीवन को जान पाते हैं। शब्दों के महत्त्व को बताने वाले ऐसे सैकड़ों प्रसंग मिलते हैं।

किवदंती है कि जब प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु से किसी ने पूछा कि ''आपको पौधों में जीवन ढूँढ़ने की प्रेरणा कहाँ से मिली?'' तो उन्होंने जवाब दिया - ''एक बार मेरी माताजी ने बातों ही बातों में बताया कि संस्कृत में पौधे को 'शस्यम्' कहा जाता है। मैंने जब इस शब्द पर विचार किया तो पाया कि यह शब्द शस् + यत् से बना है। शस् शब्द का अर्थ मार डालना या हत्या करना होता है। स्पष्ट है कि हत्या तो उसी की हो सकती है जो जीवित हो, जिसमें जान ही नहीं उसे मारा कैसे जा सकता है? इसलिए मुझे लगा कि अगर विचारकों ने पौधे के लिए शस्यम्

* *परामर्शदाता,* प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एनसीईआरटी, नयी दिल्ली

शब्द का प्रयोग किया है तो इस बात की खोज होनी चाहिए कि क्या पौधों में जान होती है?'' आगे चलकर जगदीश चंद्र बसु ने न केवल पौधों में जीवन की खोज की बल्कि उन्होंने क्रेस्कोग्राफ़ नामक यंत्र का आविष्कार किया। इस यंत्र के माध्यम से विभिन्न उत्तेजकों के प्रति पौधों की प्रतिक्रिया का अध्ययन किया जा सकता है। सर जगदीश चंद्र बसु ने यह भी सिद्ध किया कि जीवों और वनस्पतियों के उत्तकों में काफी समानता होती है और वे हमारी तरह ही दर्द और लगाव को महसूस कर सकते हैं।

यह प्रसंग बताता है कि एक शब्द भी आपके पूरे जीवन को दिशा दे सकता है, बस शर्त इतनी है कि उस शब्द से आपका जुड़ाव हो यानी आप भाषा और शब्दों को लेकर संवेदनशील हों। 'संवेदना' (सम+वेदना) अपने आपमें एक बहुत ही उपयोगी शब्द है। दरअसल वेदना शब्द का मूल 'विद्' है जिसका अर्थ 'जानना' होता है। इस विद् से ही वेद, विद्वान, विद्या, विद्यार्थी आदि शब्द बनते हैं। वेदना का अर्थ पीड़ा या कष्ट है। अर्थात् कहा जा सकता है कि कष्ट और ज्ञान के बीच एक संबंध है। दूसरे शब्दों में कहें तो कष्ट सहना और दूसरों की पीड़ा को महसूस करना, उससे जुड़ना एक स्तर पर अनुभव और ज्ञान से जुड़ना है जो आपकी विद्वता को बढ़ाता है। प्रसिद्ध हिंदी कवि गजानन माधव मुक्तिबोध ने 'संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना' की बात की थी। उपरोक्त प्रसंग में जगदीश चंद्र बसु ने पौधे की पीड़ा को महसूस किया, उसके साथ संवेदना जताई जिसके परिणामस्वरूप उन्हें संवेदनात्मक ज्ञान मिला और आविष्कार करने की प्रेरणा मिली।

यहाँ इस प्रसंग को थोड़ा विस्तार से बताने का कारण यह दिखाना है कि शब्द और भाषा के सवाल सिर्फ़ अभिव्यक्ति और संप्रेषण के सवाल नहीं होते, भाषा इनसे आगे की यात्रा तय करती है। वैदिक साहित्य (जिसके अंतर्गत संहिता, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक तथा उपनिषद् अथवा वेदांत आते हैं) के विविध पक्षों की व्याख्या करने के लिए जिन ग्रंथों की रचना की गई उन्हें 'वेदांग' कहा जाता है। इनके छः भेद हैं जिनमें से चार (शिक्षा, छन्द, निरुक्त और व्याकरण) भाषा के महत्त्व को स्थापित करते हैं। शब्द के महत्त्व को बताते हुए भाषाविद् रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव लिखते हैं–''भारतीय व्याकरण सिद्धांत में 'शब्द' को मुख्य एवं सर्वोपरि इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है। इस धारणा के परिप्रेक्ष्य में ही भाषा के सिद्धांत, व्याकरण एवं शब्दकोश निर्मित किए गए हैं। यहाँ यह भी स्वीकार किया गया है कि भाषा की सर्जनात्मक बुनावट में शब्द ही आधार है तथा शब्द भाषा के वे पूर्वनिर्मित तत्व हैं, जिनके आधार पर क्रमशः बड़े भाषिक खंड, जैसे पदबंध, उपवाक्य, वाक्य आदि निर्मित होते हैं।'' (रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव)

प्रत्येक शब्द अपनी एक कहानी कहता है, वह अपना इतिहास, अपनी जीवन यात्रा, अपने रिश्तेदारों के बारे में, अपने कद (स्तर) के बारे में और यहाँ तक कि अपने वर्ग के बारे में भी महत्वपूर्ण सूचनाएँ देता है। शब्द और अर्थ की सूचना देने वाले शास्त्र को व्युत्पत्ति शास्त्र या निरुक्त कहते हैं। इन दोनों शब्दों का निर्माण निम्न ढंग से हुआ है–व्युत्पत्ति (वि+उत्+पद्+क्तिन– मूल, उत्पत्ति, पूरी जानकारी, प्रवीणता) तथा निरुक्त– (निर्+वच्+क्त–उच्चरित, अभिव्यक्त)। (आप्टे,

वामन शिवराम, 2002) व्युत्पत्ति शब्द के महत्त्व का एक और प्रमाण है। सृजनशीलता की सामर्थ्य उत्पन्न करने वाली शक्ति कारणों) को (खासतौर से साहित्य के क्षेत्र में) तीन भागों में बाटाँ गया है इन्हें 'काव्य हेतु' कहा जाता है यह है- 1. प्रतिभा 2. व्युत्पत्ति और 3. अभ्यास। यह सही है कि इनका संबंध साहित्य से जोड़ा जाता है परंतु ये तीनों हमारे जीवन के सभी क्षेत्रों से संबंधित हैं। विद्वानों (आचार्य राजशेखर) ने व्युत्पत्ति का अर्थ बहुज्ञता दिया है और व्युत्पत्ति को प्रतिभा का संस्कारक माना है। आज के परिवेश में जब 'प्रतिभा' के जन्मजात और दैवी रूप पर तमाम सवाल उठ रहे हैं और इसका संबंध नस्लवाद तक से जोड़ा जा रहा है, तब व्युत्पत्ति और प्रतिभा के बीच भेद भी कम हुआ है। तात्पर्य यह कि शब्दों की जानकारी का सीधा संबंध चिंतन, नवोन्मेष और सृजनशीलता से जुड़ता है। किसी शब्द का अर्थ निकालना उसका विभिन्न बातों से संबंध जोड़ना, एक नयी बात या नये अर्थ तक पहुँचना हो जाता है। भाषा की लघुतम इकाई वर्ण है परंतु भावाभिव्यक्ति की वास्तविक लघुतम इकाई वाक्य है। किसी भी वाक्य को अर्थ देने में केंद्रीय भूमिका शब्द की होती है। जब शब्द वाक्य में प्रयुक्त हो जाते हैं अर्थात् संदर्भ से जुड़ जाते हैं तो उन्हें पद कहा जाता है। इसलिए कहा जा सकता है कि अर्थ इन्हीं पदों (पैरों) पर चलकर हम तक पहुँचता है। दुनिया की समस्त वस्तुओं को पदार्थ (पद का अर्थ) कहा जाता है। आचार्य दंडी ने भाषा के अभाव में पूरे संसार में अंधकार होने की जो बात की थी उसकी सार्थकता 'पदार्थ' से जुड़ती है।

निश्चित रूप से पद अपने अर्थ को बदलता रहता है इसलिए पदार्थ का हमारा बोध भी बदलता रहता है। कई बार ये अर्थ इतने बदल जाते हैं कि मूल अर्थ कहीं पीछे छूट जाता है। कई बार ये बदलाव बड़े मज़ेदार होते हैं। उदाहरण के लिए एक प्रचलित शब्द है 'स्कूल'। अक्सर इस शब्द को सुनते ही छोटे बच्चों के पसीने छूट जाते हैं और दिमाग में भारी बस्ता, मास्टरजी की छड़ी, सुबह-सुबह नहाना और बस के लिए भागने जैसे दृश्य बार-बार सामने आते हैं। 'स्कूल' शब्द ग्रीक भाषा का मूल शब्द है जिसका उच्चारण schole होता है और इसका मूल अर्थ leisure है यानी फ़ुर्सत का या अवकाश का समय जिसमें आमतौर पर आप आनंद का अनुभव करते हैं।

प्रत्येक शब्द का किसी इंसान की तरह अपना एक जीवन होता है और वह उतना ही रोचक होता है, प्रस्तुत लेख में शब्द पर बल देने का एक कारण अध्यापकों-छात्रों को शब्दों को रटने की बजाय उन्हें शब्दों से जुड़ने, उसे अनुभव करने और समझने हेतु प्रेरित करना है। विशेष रूप से पारिभाषिक एवं तकनीकी शब्दों से छात्रों / छात्राओं को अधिक परेशानी होती है। जिन शब्दों को वे पहली बार सुनने के बावजूद आसानी से समझकर उसका अर्थ निकाल सकते हैं उन्हें भी वे रटते हैं। ज़्यादातर शब्दों का निर्माण कुछ बीज शब्दों में उपसर्ग, प्रत्यय या अन्य शब्दों को जोड़कर किया जाता है। आमतौर पर हम प्रत्यय आदि के अर्थ को बहुत महत्त्व नहीं देते परंतु 'दौड़ता' का 'ता', 'बचपन' का 'पन', 'परिचय' का 'परि' आदि भी खास अर्थ देते हैं। कुछ विद्व ानों ने प्रत्यय और उपसर्ग को शब्दांश कहा है और इनके अर्थ को उतनी प्रमुखता नहीं दी है। इस संदर्भ में डॉ. रामदेव त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी भाषानुशासन' में लिखा है-'यदि प्रत्यय

को शब्दांश कहा जाए तो प्रकृति को भी शब्दांश कहना चाहिए। 'शक्ति' शब्द में 'ति' प्रत्यय ही शब्दांश नहीं है, 'शक्' प्रकृति भी शब्दांश ही है। रूढ़ि के कारण आगे जाकर शब्द का अर्थ केवल प्रकृति रह जाता है इसलिए शब्दकोशों में केवल प्रकृतियों के अर्थ दिए जाते हैं, प्रत्ययों के नहीं।'

संरचना के स्तर पर शब्दों को मुख्यत: तीन भागों में बाँटा गया है। रूढ़, यौगिक और योगरूढ़। इन तीनों शब्दों के उदाहरण के रूप में हम क्रमश: **जल, जलज** और **जलचर** को ले सकते हैं। रूढ़ शब्द किसी भाषा के मूल में होते हैं और भाषा के प्रथम चरण में इनकी संख्या काफी ज़्यादा होती है। यही कारण है कि लोकभाषाओं में ऐसे शब्द प्रचुरता से मिलते हैं। जब कोई भाषा प्रशासन, शिक्षा, तकनीक आदि से जुड़ने लगती है तो उसमें यौगिक शब्दों की संख्या बढ़ने लगती है। पारिभाषिक एवं तकनीकी शब्दावली में जिन शब्दों से विद्यार्थी अक्सर घबराते हैं वे यौगिक शब्द ही होते हैं। अगर हम थोड़ी संवेदना से यौगिक शब्दों को देखें तो हम उनके मूल अर्थ को पकड़ सकते हैं। उदाहरण के लिए –

ख(आकाश)– खग (पक्षी), खगेन्द्र (पक्षियों का राजा), खद्योत (जुगनू), खगोल।

परि (चारों ओर)– परिआवरण या पर्यावरण, परिक्षेत्र, परिपथ, परिषद्, परिश्रम, परिसर, परिभाषा, परिकल्पना, परिचय, परिजन, परिशिष्ट।

रस– रसीला, रसभरी, रसगुल्ला, रस+अयण= रसायन।

वात(हवा)– वातावरण, वातानुकूलित, वातायन (खिड़की), वातचक्र

यह बात सिर्फ़ हिंदी भाषा पर ही लागू नहीं होती। दुनिया की ज़्यादातर भाषाओं में शब्दों का निर्माण इसी प्रकार होता है और अगर इनकी प्रकृति को समझने की कोशिश की जाए तो इनके अर्थ को आसानी से समझा जा सकता है। जैसे– उर्दू में–

नज़र–नज़रअंदाज, नज़रबंद, नज़रबाज, नज़राना

कम–कमअक्ल, कमज़ोर, कमबख्त(अभागा), कमजर्फ़, कमयाब

बा–बाअदब, बाईमान, बाख़बर, बावुजूद, बाहवास (मुहम्मद मुस्तफा खाँ मद्दाह, 1992)

जापानी में*

Ji (Earth/Ground)- Jishin= Earthquake, Jimoto= Native place

Ka(House)- Katei=Household, Kaji- household work, Kanai- wife, Kacho= Head of family, Katokeu=Family property

Sen (Before)- Senshu=Last week, Sengetsu=Last month

अंग्रेज़ी में–

paidos(Greek word)= Child— Pedagogy, Padiatrics, Paediatrician

philo=Love, sophy=wise- (Phylosophy = Love of Wisdom)

इसी तरह फ़िलोलॉजी, फ़िलॉनथ्रोपी आदि शब्द बन जाते हैं जो क्रमश: शब्द और मानवता के प्रति प्रेम को दर्शाते हैं। अंग्रेज़ी का फ़िलॉसफ़ी शब्द 'विद्वता के प्रति प्रेम' का अर्थ देता है वहीं हिंदी में इसके अर्थ में प्रयुक्त 'दर्शन' शब्द दृश्य, दृष्टि, दर्शक, द्रष्टा, दर्शन, दार्शनिक के रूप में विकसित होता है। निश्चित रूप से जो भाषा हमारे अधिक करीब होगी, जिसकी संस्कृति से हम अधिक जुड़े होंगे उसमें हमारी गति अधिक होगी।

अंग्रेज़ी की तुलना में फ़ारसी के शब्द हमें ज़्यादा करीब लगेंगे क्योंकि वह सांस्कृतिक एवं

**प्रवीण कुमार*– एम.ए. जापानी भाषा; जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली–110067 के साथ चर्चा पर आधारित

भौगोलिक रूप में हमारे निकट की है। संस्कृति से जुड़ाव के स्तर पर भाषा से एक अलग संबंध बनता है क्योंकि किसी भी शैक्षणिक प्रक्रिया में संस्कृति की बड़ी भूमिका होती है। उदाहरण के लिए हम दो शब्द 'सेब' और 'गोबर' का उदाहरण ले सकते हैं जिनका यूरोप और भारत की संस्कृति से विशेष संबंध है। जहाँ गोबर हमारे मस्तिष्क को गोबर गणेश, गोबर्धन आदि से लेकर गाय और लोकगीतों में आने वाले गोबर के अनेक संदर्भों से जोड़ता है वहीं सेब का संबंध इसाई मिथकों से लेकर आदम-हव्वा के ज्ञान प्राप्ति की घटना से जुड़ता है। इस प्रकार शब्द संस्कृतियों और पुरानी परंपराओं के वाहक होते हैं। यहाँ तक कि एक ही अर्थ के वाचक शब्द 'सूर्य' और 'दिनकर' या 'जल' और 'पानी' हमारे भीतर भिन्न संवेदनाएँ जगाते हैं।

तात्पर्य यह कि कोई भी व्यक्ति (शिक्षा क्षेत्र से जुड़े लोग खासतौर से) अगर 'संवेदनात्मक भाषा और भाषात्मक संवेदना' की दृष्टि से अपने विषय को देखने की कोशिश करे तो वह सामान्य अर्थ के अतिरिक्त भी अपने विषय में कुछ जोड़ सकता है। आचार्य दण्डी ने कहा था कि 'भाषा वह प्रकाश है जिसके कारण हम दुनिया की चीज़ों को देख पाते हैं।' अगर हमारे पास इतनी क्षमता हो कि हम इस प्रकाश के निष्क्रिय उपभोक्ता की बजाय सक्रिय प्रयोगकर्ता बन जाएँ तो यह प्रकाश हमें और भी बहुत कुछ दे सकता है। रूपक के रूप में कहें तो जैसे स्थिर टार्च के प्रकाश से हमें किसी वस्तु का एक पक्ष नज़र आता है, परंतु यदि उसी टार्च का हम मनमाफ़िक उपयोग कर वस्तु विशेष के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालें तो हमें उस वस्तु के कई पक्ष देखने को मिल जाते हैं। शब्द एवं भाषा के प्रति हमारी संवेदना भी कुछ ऐसा ही काम करती है, वह नये पहलुओं को सामने ले आती है। वर्तमान समय में यह बात और भी प्रासंगिक हो गई है क्योंकि अब ज्ञान और सूचना ताकत बन गए हैं और इस ताकत का मुख्य माध्यम शब्द और भाषा है क्योंकि इसी के बल पर मानसिकता निर्माण का कार्य किया जाता है। ज्ञान और सूचना प्राप्त व्यक्ति उत्तरोत्तर खुद को उचित साबित करता जाता है और इसके साथ ही वह हर दृष्टि से समृद्ध भी होता जाता है। वह व्यक्ति और उससे संबद्ध लोग लगातार अधिकाधिक ज्ञान (धन और ताकत भी) प्राप्त करते जाते हैं। इस पूरी प्रक्रिया का संबंध शिक्षा से जुड़ता है। स्पष्ट है कि शिक्षा और भाषा के बीच एक गहरा संबंध है। शिक्षा की माध्यम भाषा यह तय करती है कि उस विषय की हमारी समझ कैसी होगी। इस बात का प्रगाढ़ संबंध उस भाषा से जुड़ता है जिससे हमारा जुड़ाव जन्म के साथ होता है। एक भाषा हमें सूचनाओं से अधिक जोड़ती है वहीं दूसरी भाषा हमारी संस्कृति से जुड़ी होती है इसलिए जब हम उस भाषा के माध्यम से किसी विषय से जुड़ते हैं तो वह जानकारी सिर्फ़ सूचनात्मक नहीं होती, साथ ही अवधारणात्मक भी होती है।

भाषा के प्रति संवेदनशील जुड़ाव के कारण ही पूरी दुनिया के शिक्षाशास्त्री प्राथमिक कक्षाओं में मातृभाषा पर विशेष बल देते हैं। मातृभाषा का संबंध अवधारणा और बोध से अधिक जुड़ता है। मातृभाषा में हमें शब्दों और पदों को रटना नहीं पड़ता, क्योंकि वे हमारे लिए बिल्कुल नए नहीं होते। मातृभाषा हमें शब्द और वाक्य ही नहीं सिखाती, वह संस्कृति से जोड़ती है। वह

छात्र के मन-मस्तिष्क में उसके रीति-रिवाज़ों, परंपराओं (रूढ़ियों), मिथकों, कथाओं आदि को इस तरह रचा-बसा देती है कि वह उसकी चिंतन प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन जाता है। भविष्य में जब वह अपनी मातृभाषा के कुछ नये शब्द भी सुनता है तो उस शब्द विशेष के किसी-न-किसी हिस्से को अपनी स्मृति और संस्कृति से जोड़ पाता है। मातृभाषा हमारी रगों में बहने लगती है इसीलिए उसके शब्दों और कथाओं से हमारा ऐसा अपनापन का रिश्ता बन जाता है कि उस भाषा के शब्द अपने अर्थ की ओर संकेत करने लगते हैं या अपनी कहानी खुद बताने लगते हैं।

उदाहरण के लिए अगर हम वात् (वायु) शब्द से अच्छी तरह परिचित हैं तो हमें पहली बार सुनने पर भी 'वातावरण', 'वातायन', 'वातानुकूलित' आदि का एक अर्थ समझ में आ जाएगा। दरअसल, हमारे मस्तिष्क में स्मृतियाँ एक ऐसे विशाल मकान में रहती हैं जिसमें बहुत सारे कमरे बने हुए हैं। जिस प्रकार आप एक कमरा खोलते हैं तो उसमें रखी बहुत सारी वस्तुओं पर आपकी नज़र पड़ती है, उसी तरह हमारा मस्तिष्क भी एक संदर्भ से जुड़ी अनेक बातों को एक साथ ले आता है। उदाहरण के लिए अगर किसी ने भोपाल नाम लिया तो भोपाल से संबंधित अनेक बातें अचानक आपके मस्तिष्क में आ जाएँगी, मसलन, भोपाल में आपका कोई संबंधी हो तो उसकी याद, भोपाल में आपने समय बिताया हो तो वह स्थान, भोपाल से संबंधित प्रसिद्ध व्यक्ति या संस्थान की याद, भोपाल के झील, भोपाल की सुघटनाएँ-दुर्घटनाएँ आदि। यानी हम कह सकते हैं कि प्रत्येक शब्द एक दीपक की तरह होता है जो अपने आस-पास के शब्दों, निकट संबंधियों पर प्रकाश डालकर हमें उनके बारे में भी बताता है।

इस प्रकार हम दैनिक जीवन में प्रयोग करने वाले अत्यंत परिचित शब्दों को भी थोड़ा ग़ौर से देखें तो वे हमें नये अर्थों से जोड़ते नज़र आएँगे। धीरे-धीरे जब शिक्षकों एवं छात्रों को इसकी आदत पड़ जाएगी तो वे शब्दों का और भाषा का अधिक संवेदनशील प्रयोग करने में और अनजान शब्दों के भी अर्थ निकालने में सक्षम हो जाएँगे।

संदर्भ

आप्टे, वामन शिवराम. 2002. *संस्कृत-हिन्दी कोश.* नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, दिल्ली, पुनर्मुद्रित आठवां संस्करण.

मद्दाह, मुहम्मद मुस्तफा खाँ. 1992. *उर्दू-हिन्दी शब्दकोश.* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, सप्तम संस्करण.

शर्मा, डॉ. रामविलास. 2002. *भाषा और समाज.* राजकमल प्रकाशन, पाँचवाँ संस्करण.

श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ-*शब्द की परिभाषा तथा उसके अर्थ प्रतिपादन का परिप्रेक्ष्य- हिंदी के विशिष्ट संदर्भ में;* इग्नू एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम द्वितीय वर्ष; एमएचडी-07, इकाई 9 (www.egyankosh.ac.in)

हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1(संपादित); ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, तृतीय संस्करण-1985, पुनर्मुद्रण 2009

त्रिपाठी, आचार्य रामदेव. 1986. *हिन्दी भाषानुशासन.* बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, प्रथम संस्करण.